Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

श्रीरामकृष्ण देव और स्वामी विवेकानन्द की परमसत्ता विषयक अवधारणा

राहुल कुमार पाण्डेय
पूर्व शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज,
उत्तर प्रदेश, भारत

श्रीरामकृष्ण देव की परमसत्ता अर्थात् ब्रह्मविषयक अवधारणा दो भागों में प्राप्त होती है। उनकी प्रथम ब्रह्मविषयक अवधारणा उनके द्वारा की गई वेदान्तसाधना के पूर्व की है। यहाँ रामकृष्ण परमहंस के लिए ब्रह्म माँ काली ही हैं। वह जगत् की आदिशक्ति हैं। इसी की शक्ति से जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय होती है। यहाँ पर रामकृष्ण के लिए ब्रह्म सगुण ब्रह्म प्रतीत होता है।

ब्रह्मविषयक उनकी द्वितीय अवधारणा निर्गुण ब्रह्म की है। इस अवधारणा पर उनके अद्वैतवेदान्ती गुरु तोतापुरी के द्वारा करवायी गई अद्वैत–साधना का प्रभाव है। यहाँ पर रामकृष्ण की धारणा पूरी तरह परम्परागत अद्वैत वेदान्तियों की ही परम्परा में है, यानी पारमार्थिक स्तर पर निर्गुण और अद्वैतरूप ब्रह्म ही व्यावहारिक स्तर पर प्रपंच रूप में उपस्थित होता है।

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं कि परमसत्ता अर्थात् ब्रह्म विद्या और अविद्या के द्वैत से परे है। इसके लिए वे एक उपमा देते हैं कि जिस प्रकार पाँव में चुभे काँटे को एक दूसरे काँटे से निकालकर फिर दोनों काँटों को फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार विद्या के द्वारा अविद्या की निवृत्ति हो जाने के पश्चात् विद्या को भी त्यागना होता है।

श्रीरामकृष्ण देव प्रायः कहा करते थे कि ब्रह्म निर्गुण, अगतिशील, अचल एवं मेरुपर्वत की तरह दृढ़ है। वह शुभ और अशुभ दोनों से उसी प्रकार अतीत है जिस प्रकार दीपक का प्रकाश भगवद्गीता पढ़ने के लिए और जालसाजी करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।[1] पुनः ब्रह्म एक सर्प के समान है जिसके भीतर विष पाया जाता है। जिस प्रकार सर्प का विष दूसरों के लिए तो वास्तविक विष है पर स्वयं सर्प उससे तनिक भी प्रभावित नहीं होता ठीक उसी प्रकार संसार में जो दुःख, क्लेश, पाप व अन्य प्रकार के

अशुभ पाये जाते हैं, वे ब्रह्मेतर अज्ञानी मनुष्यों के लिए हैं, स्वयं ब्रह्म भी इससे तनिक भी प्रभावित नहीं होता। ब्रह्म शुभाशुभ, पाप–पुण्य, दुःख–सुख इत्यादि द्वन्द्वों से सदा अतीत है।[2] वह ज्ञान–अज्ञान, धर्म–अधर्म, मन–वाणी, धारणा–ध्यान, ज्ञाता–ज्ञेय, सत्–असत् इत्यादि धारणाओं से भी अतीत है। वह सभी प्रकार की सापेक्षता से परे है। ब्रह्म उस आकाश के समान है जिसमें यद्यपि सभी प्रकार की गन्ध पायी जाती है पर वह आकाश स्वयम् इससे दूषित नहीं होता है।[3]

श्रीरामकृष्ण देव तत्त्व के विषय में किसी वाद या सिद्धान्त का सदा विरोध करते थे। वे इस विषय में सदा व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाते थे। उनका कहना था कि यदि घड़े का पानी मेरी प्यास बुझा देता है तो नदी या झील के पानी की थाह लेने का क्या अर्थ है?[4] पुनः वे कहते थे कि तत्त्व तो एक ही है, पर लोग उसे भिन्नरूपों में देखते हैं।[5] उनके अनुसार परमतत्त्व एक गिरगिट की तरह है जो भिन्न–भिन्न मनुष्यों को भिन्न–भिन्न प्रकार से दिखाई देता है। जिस व्यक्ति को गिरगिट का सम्यक् ज्ञान नहीं है वह उसके भिन्न–भिन्न रूपों को भिन्न–भिन्न वस्तुओं के रूप में ग्रहण करेगा। पर जिन्हें गिरगिट के लाल, हरे, पीले सभी रूपों का ज्ञान है, वह इन रूपों के विरोध की अपेक्षा सामंजस्य को अधिक महत्त्व देगा।

यहाँ पर ये द्रष्टव्य है कि रामकृष्ण देव द्वारा प्रयुक्त सभी सिद्धान्त वही हैं जो ब्रह्मसूत्र और उसके भाष्यों में प्राप्त होते हैं, लेकिन उनकी जो शब्दावली है वह सामान्य लोक की शब्दावली है। लोकप्रयुक्त उदाहरणों का वे जो उपयोग करते थे उसकी वजह से उनके जो उपदेश थे वे सीधे सामान्य अशिक्षित व्यक्ति को भी समझ में आ जाते थे। इसीलिए इतना अधिक कार्य इनके द्वारा हो सका।

श्रीरामकृष्ण देव के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र तत्त्व है। वह अपौरुषेय निरपेक्ष तत्त्व है। वह उसी प्रकार अनिवर्चनीय और अवर्णनीय है, जिस प्रकार कि उस व्यक्ति के लिए समुद्र अवर्णनीय है जिसने समुद्र को कभी नहीं देखा है।[6]

श्रीरामकृष्ण देव निर्गुण और सगुण ब्रह्म में समन्वय करते हुए कहते हैं कि– ''वेदों ने जिसे ब्रह्म कहा है उन्हीं को मैं माँ कहकर पुकारता हूँ। जो निर्गुण है वही सगुण है, जो ब्रह्म है वही शक्ति है। जब यह बोध होता है कि वह निष्क्रिय है तब मैं उसे ब्रह्म कहता हूँ और जब यह सोचता हूँ कि वह सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कर्ता है तब उसे आदिशक्ति काली कहता हूँ।''[7] जिस प्रकार एक व्यक्ति एक समय वस्त्रधारी रूप में और दूसरे समय में निर्वस्त्र रूप में रहता है उसी पकार एक ही ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में स्थित होता है।[8] शक्ति– सहित ब्रह्म सगुण ब्रह्म है, शक्तिरहित ब्रह्म निर्गुण ब्रह्म है।[9] वस्तु एक ही है, केवल

नामभेद है। जो ब्रह्म है वही भगवान् है वही आत्मा है। ब्रह्म की उभयविध धारणाओं के प्रति श्रीरामकृष्ण देव की समन्वयवादी प्रवृत्ति होते हुए भी उन्हें परमतत्त्व की सगुण धारणा ही अधिक प्रिय थी।

स्वामी विवेकानन्द की ब्रह्मविषयक अवधारणा अत्यन्त स्पष्ट थी। वे कहते हैं कि यह अद्वैतरूप ब्रह्म ही परमसत् है। ब्रह्म सत्, सर्वव्यापी, शुद्धचैतन्यरूप, अन्तर्यामी है। ब्रह्म से बढ़कर कुछ नहीं है। अतः उसे निरतिशय कहते हैं। ब्रह्म ही विश्व का अव्याकृत रूप है। सभी वस्तुओं का परमकारण, सभी शक्तियों का अधिष्ठानरूप है। ब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष, निष्कलुष, निरंजन, निरूपाधि, निरपेक्ष, अनन्त और अविभाज्य है। अविभाज्य होने के कारण वे ब्रह्म को निरवयव कहते हैं, क्योंकि उसका कोई अवयव या अंग नहीं है। स्वामी जी परमतत्त्व (ब्रह्म) को दिक्, काल और कारणता के परे भी मानते हैं।

स्वामी जी सगुण ब्रह्म की सत्ता भी स्वीकार करते हैं। उपनिषदों का अनुगमन करते हुए वे पर और अपर अर्थात् निर्गुण और सगुण दोनों को सत्य मानते हैं। वे कहते हैं कि इन दोनों में मौलिक भेद नहीं है। दोनों एक ही ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। परमतत्त्व एक 'अद्वय' अनन्त ब्रह्म है, परन्तु परमतत्त्व परमात्मा भी है। सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वज्ञ, स्रष्टा आदि उपाधियों या विशेषणों से वही ईश्वर या भगवान् कहलाता है।[10]

अद्वैत के पोषक होने के कारण स्वामी विवेकानन्द परमतत्त्व को अनिर्वचनीय भी मानते हैं, परन्तु उनकी अनिर्वचनीयता की धारणा अन्य अद्वैतवादियों से भिन्न है। स्वामी जी के अनुसार वह अप्रमेय अवश्य है, परन्तु स्वानुभूतिसम्वेद्य नहीं। वह यथार्थज्ञान या प्रमा का विषय नहीं क्योंकि प्रमा तो बौद्धिक ज्ञान है। जो बुद्धि की सभी कोटियों के परे है, वह अबौद्धिक या बुद्धयातीत है। अतः अबौद्धिक को अप्रमेय ही माना जा सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह स्वानुभूतिसम्बेद्य है। अप्रमेय होने के कारण वह बौद्धिक ज्ञान और तार्किक अभिव्यक्ति का विषय नहीं बन सकता, सभी प्रमाणों की सीमा वहाँ समाप्त हो जाती है। परन्तु परमतत्त्व को जानने का प्रयास हो सकता है। श्रुति–प्रमाण या आगमन से उसकी सत्ता सिद्ध है।

स्वामी जी यह नहीं स्वीकार करते हैं कि 'ब्रह्म' तथा 'ईश्वर' दो हैं। उनका कहना है कि बुद्धि के द्वारा सत् जो है, वह है, उसके स्वरूप का स्पष्ट अवबोध तो अभी नहीं है, अतः उस पर विचार भिन्न–भिन्न दृष्टियों से किया जाता है। उसी सत् को जब एक दृष्टि से देखते हैं, तो वह 'ब्रह्म' है तथा यदि देखने का ढंग परिवर्तित हो जाय और सत् को देखने की दृष्टि भिन्न हो जाय तो वही सत् 'ईश्वर' प्रतीत होता है। जब निर्गुण ब्रह्म को हम माया के कुहरे में से देखते हैं, तो वही सगुण ब्रह्म या ईश्वर कहलाता है। स्वामी जी के अनुसार यह भेद पारमार्थिकदृष्टि से है ही नहीं, यह दृष्टिभेद है। इस प्रकार उनके अनुसार ईश्वर को अन्ततः अयथार्थ कहने की आवश्यकता ही नहीं, वही सत् तात्त्विकदृष्टि से ब्रह्म है, और उस सत्

को जब हम धार्मिकदृष्टि से देखते हैं, तो वह ईश्वर है। अतः विवेकानन्द का कहना है कि जो परमसत् है, वही हमारी भावना, आराधना, भक्ति का विषय भी है।

सन्दर्भ

1. श्रीरामकृष्ण उपदेश, मलापुर मठ, मद्रास, 1960, पृ0 261
2. रामकृष्णवचनामृत (द्वितीय भाग), पृ0 454
3. रामकृष्णवचनामृत (प्रथम भाग), पृ0 533
4. श्रीरामकृष्ण उपदेश, ब्रह्मानन्द, पृ0 39
5. श्रीरामकृष्ण उपदेश, ब्रह्मानन्द, पृ0 39
6. श्रीरामकृष्ण उपदेश, मलापुर मठ, मद्रास, सन् 1960, पृ0 261
7. रामकृष्णवचनामृत (प्रथम भाग), पृ0 68
8. रामकृष्ण उपदेश, अं0 अनुवाद, पृ0 267
9. रामकृष्ण उपदेश, अं0 अनुवाद, पृ0 267
10. विवेकानन्द साहित्य (अष्टम खण्ड), पृ0 118–19